



0967CH03

नात्सीवाद और हिटलर का उदय

1945 के वसंत में हेलमुट नामक 11 वर्षीय जर्मन लड़का बिस्तर में लेटे कुछ सोच रहा था। तभी उसे अपने माता-पिता की दबी-दबी सी आवाजें सुनाई दीं। हेलमुट कान लगा कर उनकी बातचीत सुनने की कोशिश करने लगा। वे गंभीर स्वर में किसी मुद्दे पर बहस कर रहे थे। हेलमुट के पिता एक जाने-माने चिकित्सक थे। उस वक्त वे अपनी पत्नी से इस बारे में बात कर रहे थे कि क्या उन्हें पूरे परिवार को खत्म कर देना चाहिए या अकेले आत्महत्या कर लेनी चाहिए। उन्हें अपना भविष्य सुरक्षित दिखाई नहीं दे रहा था। वे घबराहट भरे स्वर में कह रहे थे, “अब मित्र राष्ट्र भी हमारे साथ वैसा ही बर्ताव करेंगे जैसा हमने अपाहिजों और यहूदियों के साथ किया था।” अगले दिन वे हेलमुट को लेकर बाग में घूमने गए। यह आखिरी मौका था जब हेलमुट अपने पिता के साथ बाग में गया। दोनों ने बच्चों के पुराने गीत गाए और खूब सारा वक्त खेलते-कूदते बिताया। कुछ समय बाद हेलमुट के पिता ने अपने दफ्तर में खुद को गोली मार ली। हेलमुट की यादों में वह क्षण अभी भी जिंदा है जब उसके पिता की खून में सनी वर्दी को घर के अलाव में ही जला दिया गया था। हेलमुट ने जो कुछ सुना था और जो कुछ हुआ, उससे उसके दिलोदिमाग पर इतना गहरा सदमा पहुँचा कि अगले नौ साल तक वह घर में एक कौर भी नहीं खा पाया। उसे यही डर सताता रहा कि कहीं उसकी माँ उसे भी ज़हर न दे दे।

हेलमुट को शायद समझ में न आया हो लेकिन हकीकत यह है कि उसके पिता ‘नात्सी’ थे। वे एडॉल्फ़ हिटलर के कट्टर समर्थक थे। आप में से कई बच्चे नात्सियों और उनके नेता हिटलर के बारे में जानते होंगे। आपको शायद पता होगा कि हिटलर जर्मनी को दुनिया का सबसे ताकतवर देश बनाने को कटिबद्ध था। वह पूरे यूरोप को जीत लेना चाहता था। आपने यह भी सुना होगा कि उसने यहूदियों को मरवाया था। लेकिन नात्सीवाद सिर्फ़ इन इक्का-दुक्का घटनाओं का नाम नहीं है। यह दुनिया और राजनीति के बारे में एक संपूर्ण व्यवस्था, विचारों की एक पूरी संरचना का नाम है। आइए, समझने की कोशिश करें कि नात्सीवाद का मतलब क्या था। इस सिलसिले में सबसे पहले हम यह देखेंगे कि हेलमुट के पिता ने आत्महत्या क्यों की थी; वे किस चीज़ से डरे हुए थे।

मई 1945 में जर्मनी ने मित्र राष्ट्रों के सामने समर्पण कर दिया। हिटलर को अंदाज़ा हो चुका था कि अब उसकी लड़ाई का क्या हश्र होने वाला है। इसलिए, हिटलर और उसके प्रचार मंत्री ग्योबल्स ने बर्लिन के एक बंकर में पूरे परिवार के साथ अप्रैल में ही आत्महत्या कर ली थी। युद्ध खत्म होने के बाद न्यूरेम्बर्ग में एक अंतर्राष्ट्रीय सैनिक अदालत स्थापित की गई। इस अदालत को शांति के विरुद्ध किए गए अपराधों, मानवता के खिलाफ़ किए गए अपराधों और युद्ध अपराधों के लिए नात्सी युद्धबंदियों पर मुकदमा चलाने



चित्र 1 - हिटलर (मध्य) और ग्योबल्स (बाएँ) सरकारी बैठक के बाद बाहर निकलते हुए, 1932.

नए शब्द

मित्र राष्ट्र : मित्र राष्ट्रों का नेतृत्व शुरू में ब्रिटेन और फ़्रांस के हाथों में था। 1941 में सोवियत संघ और अमेरिका भी इस गठबंधन में शामिल हो गए। उन्होंने धुरी शक्तियों यानी जर्मनी, इटली और जापान का मिल कर सामना किया।

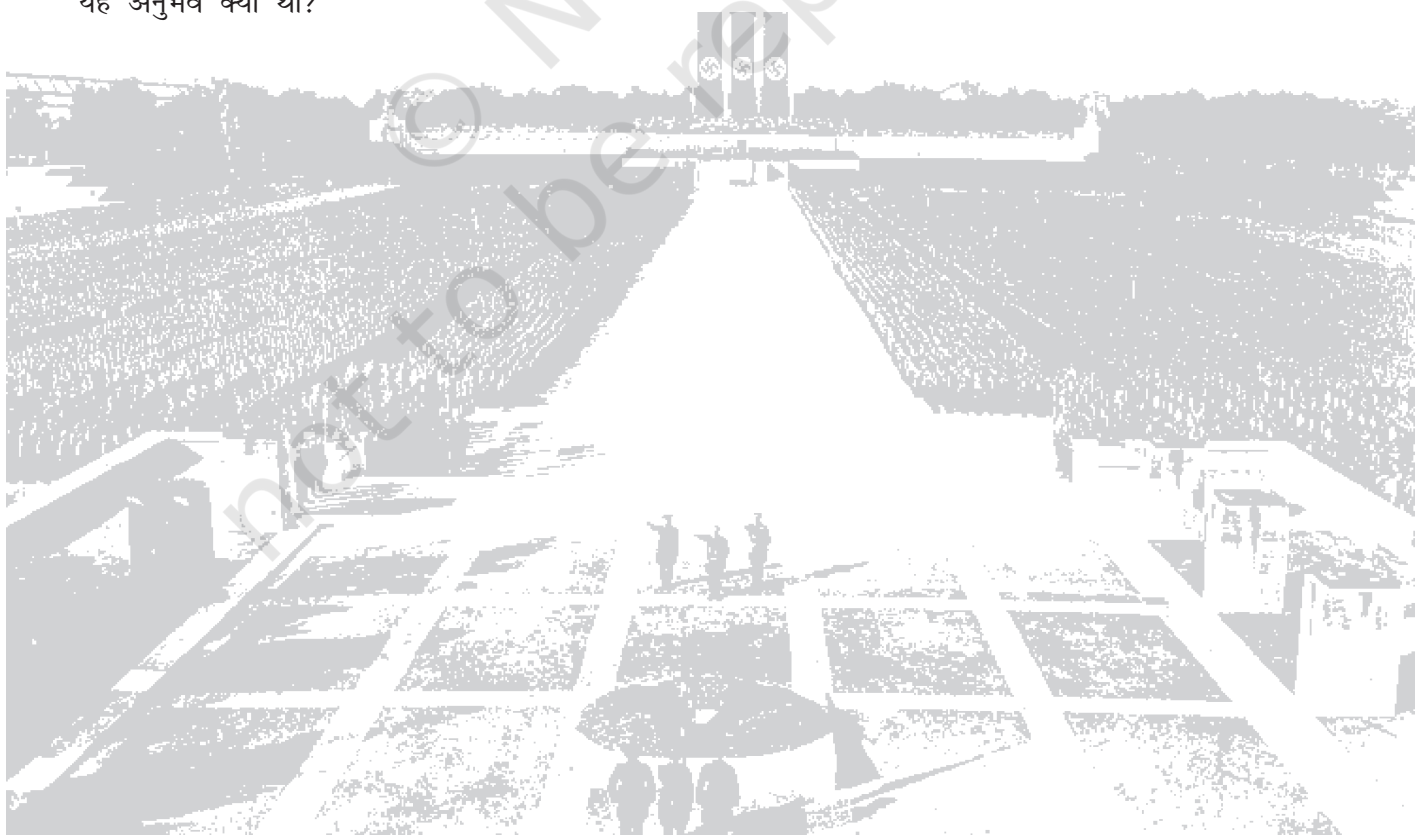
का ज़िम्मा सौंपा गया था। युद्ध के दौरान जर्मनी के व्यवहार, खासतौर से इंसानियत के खिलाफ़ किए गए उसके अपराधों की वजह से कई गंभीर नैतिक सवाल खड़े हुए और उसके कृत्यों की दुनिया भर में निंदा की गई। ये कृत्य क्या थे?

दूसरे विश्वयुद्ध के साए में जर्मनी ने जनसंहार शुरू कर दिया जिसके तहत यूरोप में रहने वाले कुछ खास नस्ल के लोगों को सामूहिक रूप से मारा जाने लगा। इस युद्ध में मारे गए लोगों में 60 लाख यहूदी, 2 लाख जिप्सी और 10 लाख पोलैंड के नागरिक थे। साथ ही मानसिक व शारीरिक रूप से अपंग घोषित किए गए 70,000 जर्मन नागरिक भी मार डाले गए। इनके अलावा न जाने कितने ही राजनीतिक विरोधियों को भी मौत की नींद सुला दिया गया। इतनी बड़ी तादाद में लोगों को मारने के लिए औषवित्स जैसे कत्लखाने बनाए गए जहाँ ज़हरीली गैस से हजारों लोगों को एक साथ मौत के घाट उतार दिया जाता था। न्यूरेम्बर्ग अदालत ने केवल 11 मुख्य नात्सियों को ही मौत की सज़ा दी। बाकी आरोपियों में से बहुतों को उम्र कैद की सज़ा सुनाई गई। सज़ा तो मिली लेकिन नात्सियों को जो सज़ा दी गई वह उनकी बर्बरता और उनके जुल्मों के मुकाबले बहुत छोटी थी। असल में, मित्र राष्ट्र पराजित जर्मनी पर इस बार वैसा कठोर दंड नहीं थोपना चाहते थे जिस तरह का दंड पहले विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी पर थोपा गया था।

बहुत सारे लोगों का मानना था कि पहले विश्वयुद्ध के आखिर में जर्मनी के लोग जिस तरह के अनुभव से गुज़रे उसने भी नात्सी जर्मनी के उदय में योगदान दिया था।

यह अनुभव क्या था?

नात्सी शब्द जर्मन भाषा के शब्द 'नात्सियोनाल' के प्रारंभिक अक्षरों को लेकर बनाया गया है। 'नात्सियोनाल' शब्द हिटलर की पार्टी के नाम का पहला शब्द था इसलिए इस पार्टी के लोगों को नात्सी कहा जाता था।

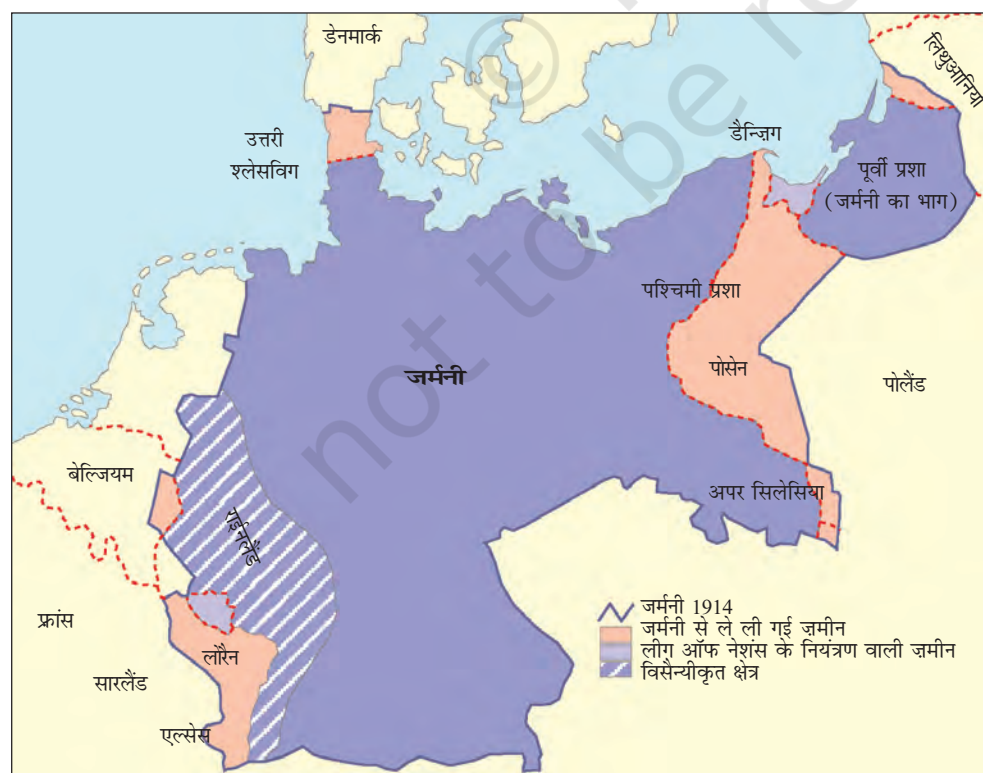


1 वाइमर गणराज्य का जन्म

बीसवीं शताब्दी के शुरुआती सालों में जर्मनी एक ताकतवर साम्राज्य था। उसने ऑस्ट्रियाई साम्राज्य के साथ मिलकर मित्र राष्ट्रों (इंग्लैंड, फ्रांस और रूस) के खिलाफ पहला विश्वयुद्ध (1914-1918) लड़ा था। दुनिया की सभी बड़ी शक्तियाँ यह सोच कर इस युद्ध में कूद पड़ी थीं कि उन्हें जल्दी ही विजय मिल जाएगी। सभी को किसी-न-किसी फायदे की उम्मीद थी। उन्हें अंदाज़ा नहीं था कि यह युद्ध इतना लंबा खिंच जाएगा और पूरे यूरोप को आर्थिक दृष्टि से निचोड़ कर रख देगा। फ्रांस और बेल्जियम पर कब्ज़ा करके जर्मनी ने शुरुआत में सफलताएँ हासिल कीं लेकिन 1917 में जब अमेरिका भी मित्र राष्ट्रों में शामिल हो गया तो इस खेमे को काफ़ी ताकत मिली और आखिरकार, नवंबर 1918 में उन्होंने केंद्रीय शक्तियों को हराने के बाद जर्मनी को भी घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया।

साम्राज्यवादी जर्मनी की पराजय और सम्राट के पदत्याग ने वहाँ की संसदीय पार्टियों को जर्मन राजनीतिक व्यवस्था को एक नए साँचे में ढालने का अच्छा मौका उपलब्ध कराया। इसी सिलसिले में वाइमर में एक राष्ट्रीय सभा की बैठक बुलाई गई और संघीय आधार पर एक लोकतांत्रिक संविधान पारित किया गया। नई व्यवस्था में जर्मन संसद यानी राइखस्टाग के लिए जनप्रतिनिधियों का चुनाव किया जाने लगा। प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिए औरतों सहित सभी वयस्क नागरिकों को समान और सार्वभौमिक मताधिकार प्रदान किया गया।

लेकिन यह नया गणराज्य खुद जर्मनी के ही बहुत सारे लोगों को रास नहीं आ रहा था। इसकी एक वजह तो यही थी कि पहले विश्वयुद्ध में जर्मनी



चित्र 2 - वर्साय की संधि के बाद जर्मनी.
इस नक्शे में आप उन इलाकों को देख सकते हैं जो संधि के बाद जर्मनी के हाथ से निकल गए थे।

की पराजय के बाद विजयी देशों ने उस पर बहुत कठोर शर्तें थोप दी थीं। मित्र राष्ट्रों के साथ वर्साय (Versailles) में हुई शांति-संधि जर्मनी की जनता के लिए बहुत कठोर और अपमानजनक थी। इस संधि की वजह से जर्मनी को अपने सारे उपनिवेश, तकरीबन 10 प्रतिशत आबादी, 13 प्रतिशत भूभाग, 75 प्रतिशत लौह भंडार और 26 प्रतिशत कोयला भंडार फ्रांस, पोलैंड, डेनमार्क और लिथुआनिया के हवाले करने पड़े। जर्मनी की रही-सही ताकत खत्म करने के लिए मित्र राष्ट्रों ने उसकी सेना भी भंग कर दी। युद्ध अपराधबोध अनुच्छेद (War Guilt Clause) के तहत युद्ध के कारण हुई सारी तबाही के लिए जर्मनी को ज़िम्मेदार ठहराया गया। इसके एवज़ में उस पर छः अरब पौंड का जुर्माना लगाया गया। खनिज संसाधनों वाले राइनलैंड पर भी बीस के दशक में ज्यादातर मित्र राष्ट्रों का ही क़ब्ज़ा रहा। बहुत सारे जर्मनों ने न केवल इस हार के लिए बल्कि वर्साय में हुए इस अपमान के लिए भी वाइमर गणराज्य को ही ज़िम्मेदार ठहराया।

1.1 युद्ध का असर

इस युद्ध ने पूरे महाद्वीप को मनोवैज्ञानिक और आर्थिक, दोनों ही स्तरों पर तोड़ कर रख दिया। यूरोप कल तक कर्ज़ देने वालों का महाद्वीप कहलाता था जो युद्ध खत्म होते-होते कर्ज़दारों का महाद्वीप बन गया। विडंबना यह थी कि पुराने साम्राज्य द्वारा किए गए अपराधों का **हर्जाना** नवजात वाइमर गणराज्य से वसूल किया जा रहा था। इस गणराज्य को युद्ध में पराजय के अपराधबोध और राष्ट्रीय अपमान का बोझ तो ढोना ही पड़ा, हर्जाना चुकाने की वजह से आर्थिक स्तर पर भी वह अपंग हो चुका था। वाइमर गणराज्य के हिमायतियों में मुख्य रूप से समाजवादी, कैथलिक और डेमोक्रेट खेमे के लोग थे। रूढ़िवादी/पुरातनपंथी राष्ट्रवादी मिथकों की आड़ में उन्हें तरह-तरह के हमलों का निशाना बनाया जाने लगा। 'नवंबर के अपराधी' कहकर उनका खुलेआम मज़ाक उड़ाया गया। इस मनोदशा का तीस के दशक के शुरुआती राजनीतिक घटनाक्रम पर गहरा असर पड़ा।

पहले महायुद्ध ने यूरोपीय समाज और राजनीतिक व्यवस्था पर अपनी गहरी छाप छोड़ दी थी। सिपाहियों को आम नागरिकों के मुकाबले ज़्यादा सम्मान दिया जाने लगा। राजनेता और प्रचारक इस बात पर जोर देने लगे कि पुरुषों को आक्रामक, ताकतवर और मर्दाना गुणों वाला होना चाहिए। मीडिया में **खंदकों** की ज़िंदगी का महिमामंडन किया जा रहा था। लेकिन सच्चाई यह थी कि सिपाही इन खंदकों में बड़ी दयनीय ज़िंदगी जी रहे थे। वे लाशों को खाने वाले चूहों से घिरे रहते। वे ज़हरीली गैस और दुश्मनों की गोलाबारी का बहादुरी से सामना करते हुए भी अपने साथियों को पल-पल मरते देखते थे। सार्वजनिक जीवन में आक्रामक फ़ौजी प्रचार और राष्ट्रीय सम्मान व प्रतिष्ठा की चाह के सामने बाकी सारी चीज़ें गौण हो गईं जबकि हाल ही में सत्ता में आए रूढ़िवादी तानाशाहों को व्यापक जनसमर्थन मिलने लगा। उस वक्त लोकतंत्र एक नया और बहुत नाजुक विचार था जो दोनों महायुद्धों के बीच पूरे यूरोप में फैली अस्थिरता का सामना नहीं कर सकता था।

1.2 राजनीतिक रैडिकलवाद (आमूल परिवर्तनवाद) और आर्थिक संकट

जिस समय वाइमर गणराज्य की स्थापना हुई उसी समय रूस में हुई बोलशेविक क्रांति की तर्ज़ पर जर्मनी में भी स्पार्टकिस्ट लीग अपने क्रांतिकारी

नए शब्द

हर्जाना : किसी गलती के बदले दण्ड के रूप में नुकसान की भरपाई करना।

खंदक : युद्ध के मोर्चे पर सैनिकों के छिपने के लिए खोदे गए गड्ढे।



चित्र 3 - स्पार्टकिस्ट लीग नामक रैडिकल संगठन द्वारा आयोजित की गई रैली का दृश्य.

प्रशियन चेंबर ऑफ़ डेप्यूटीज़, बर्लिन के सामने आयोजित रैली। 1918-1919 के जाड़ों में बर्लिन की सड़कों पर आम लोगों का ही कब्ज़ा था। राजनीतिक प्रदर्शन रोज़ाना की घटना बन गया था।

विद्रोह की योजनाओं को अंजाम देने लगी। बहुत सारे शहरों में मजदूरों और नाविकों की सोवियतें बनाई गईं। बर्लिन के राजनीतिक माहौल में सोवियत किस्म की शासन व्यवस्था की हिमायत के नारे गूँज रहे थे। इसीलिए समाजवादियों, डेमोक्रेट्स और कैथलिक गुटों ने वाइमर में इकट्ठा होकर इस प्रकार की शासन व्यवस्था के विरोध में एक लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना का फैसला लिया। और आखिरकार वाइमर गणराज्य ने पुराने सैनिकों के फ़्री कोर नामक संगठन की मदद से इस विद्रोह को कुचल दिया। इस पूरे घटनाक्रम के बाद स्पार्टकिस्टों ने जर्मनी में कम्युनिस्ट पार्टी की नींव डाली। इसके बाद कम्युनिस्ट (साम्यवादी) और समाजवादी एक-दूसरे के कट्टर दुश्मन हो गए और हिटलर के खिलाफ़ कभी भी साझा मोर्चा नहीं खोल सके। क्रांतिकारी और उग्र राष्ट्रवादी, दोनों ही खेमे रैडिकल समाधानों के लिए आवाज़ें उठाने लगे।

राजनीतिक रैडिकलवादी विचारों को 1923 के आर्थिक संकट से और बल मिला। जर्मनी ने पहला विश्वयुद्ध मोटे तौर पर कर्ज़ लेकर लड़ा था। और युद्ध के बाद तो उसे स्वर्ण मुद्रा में हर्जाना भी भरना पड़ा। इस दोहरे बोझ से जर्मनी के स्वर्ण भंडार लगभग समाप्त होने की स्थिति में पहुँच गए थे। आखिरकार 1923 में जर्मनी ने कर्ज़ और हर्जाना चुकाने से इनकार कर दिया। इसके जवाब में फ़्रांसीसियों ने जर्मनी के मुख्य औद्योगिक इलाके रूर पर कब्ज़ा कर लिया। यह जर्मनी के विशाल कोयला भंडारों वाला इलाका था। जर्मनी ने फ़्रांस के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध के रूप में बड़े पैमाने पर कागज़ी



चित्र 4 - वेतन भुगतान के लिए बर्लिन में टोकरियों और ठेलों में कागज़ के नोट लादे जा रहे हैं, 1923. जर्मन मार्क की कीमत इतनी कम रह गई थी कि मामूली भुगतान के लिए भी बहुत सारे नोटों की ज़रूरत पड़ती थी।

मुद्रा छापना शुरू कर दिया। जर्मन सरकार ने इतने बड़े पैमाने पर मुद्रा छाप दी कि उसकी मुद्रा मार्क का मूल्य तेजी से गिरने लगा। अप्रैल में एक अमेरिकी डॉलर की कीमत 24,000 मार्क के बराबर थी जो जुलाई में 3,53,000 मार्क, अगस्त में 46,21,000 मार्क तथा दिसंबर में 9,88,60,000 मार्क हो गई। इस तरह एक डॉलर में खरबों मार्क मिलने लगे। जैसे-जैसे मार्क की कीमत गिरती गई, जरूरी चीजों की कीमतें आसमान छूने लगीं। रेखाचित्रों में जर्मन नागरिकों को पावरोटी खरीदने के लिए बैलगाड़ी में नोट भरकर ले जाते हुए दिखाया जाने लगा। जर्मन समाज दुनिया भर में हमदर्दी का पात्र बन कर रह गया। इस संकट को बाद में अति-मुद्रास्फीति का नाम दिया गया। जब कीमतें बेहिसाब बढ़ जाती हैं तो उस स्थिति को अति-मुद्रास्फीति का नाम दिया जाता है।

जर्मनी को इस संकट से निकालने के लिए अमेरिकी सरकार ने हस्तक्षेप किया। इसके लिए अमेरिका ने डॉव्स योजना बनाई। इस योजना में जर्मनी के आर्थिक संकट को दूर करने के लिए हर्जाने की शर्तों को दोबारा तय किया गया।

1.3 मंदी के साल

सन् 1924 से 1928 तक जर्मनी में कुछ स्थिरता रही। लेकिन यह स्थिरता मानो रेत के ढेर पर खड़ी थी। जर्मन निवेश और औद्योगिक गतिविधियों में सुधार मुख्यतः अमेरिका से लिए गए अल्पकालिक कर्जों पर आश्रित था। जब 1929 में **वॉल स्ट्रीट एक्सचेंज** (शेयर बाजार) धराशायी हो गया तो जर्मनी को मिल रही यह मदद भी रातों-रात बंद हो गई। कीमतों में गिरावट की आशंका को देखते हुए लोग धड़ाधड़ अपने शेयर बेचने लगे। 24 अक्टूबर को केवल एक दिन में 1.3 करोड़ शेयर बेच दिए गए। यह आर्थिक महामंदी की शुरुआत थी। 1929 से 1932 तक के अगले तीन सालों में अमेरिका की राष्ट्रीय आय केवल आधी रह गई। फैक्ट्रियाँ बंद हो गई थीं, निर्यात गिरता जा रहा था, किसानों की हालत खराब थी और स्ट्रेबज बाजार से पैसा खींचते जा रहे थे। अमेरिकी अर्थव्यवस्था में आई इस मंदी का असर दुनिया भर में महसूस किया गया।

इस मंदी का सबसे बुरा प्रभाव जर्मन अर्थव्यवस्था पर पड़ा। 1932 में जर्मनी का औद्योगिक उत्पादन 1929 के मुकाबले केवल 40 प्रतिशत रह गया था। मजदूर या तो बेरोज़गार होते जा रहे थे या उनके वेतन काफ़ी गिर चुके थे। बेरोज़गारों की संख्या 60 लाख तक जा पहुँची। जर्मनी की सड़कों पर ऐसे लोग बड़ी तादाद में दिखाई देने लगे जो - 'मैं कोई भी काम करने को तैयार हूँ' - लिखी तख्ती गले में लटकाये खड़े रहते थे। बेरोज़गार नौजवान या तो ताश खेलते पाए जाते थे, नुक्कड़ों पर झुंड लगाए रहते थे या फिर रोज़गार दफ़्तरों के बाहर लंबी-लंबी कतार में खड़े पाए जाते थे। जैसे-जैसे रोज़गार



चित्र 5 - रात को सोने के लिए कतार में खड़े बेघर लोग, 1923.



चित्र 6 - लाइन पर सोते लोग। महामंदी के दिनों में बेरोज़गारों को न तो वेतन की उम्मीद रहती थी न ही ठौर-ठिकाने की। जाड़ों में जब उन्हें सिर छिपाने की जगह चाहिए होती थी तो इसके लिए भी उन्हें पैसा देना पड़ता था।

नए शब्द

वॉल स्ट्रीट एक्सचेंज : अमेरिका में स्थित दुनिया का सबसे बड़ा शेयर बाजार।

खत्म हो रहे थे, युवा वर्ग आपराधिक गतिविधियों में लिप्त होता जा रहा था। चारों तरफ़ गहरी हताशा का माहौल था।

आर्थिक संकट ने लोगों में गहरी बेचैनी और डर पैदा कर दिया था। जैसे-जैसे मुद्रा का अवमूल्यन होता जा रहा था; मध्यवर्ग, खासतौर से वेतनभोगी कर्मचारी और पेंशनधारियों की बचत भी सिकुड़ती जा रही थी। कारोबार ठप्प हो जाने से छोटे-मोटे व्यवसायी, स्वरोज़गार में लगे लोग और खुदरा व्यापारियों की हालत भी खराब होती जा रही थी। समाज के इन तबकों को **सर्वहाराकरण** का भय सता रहा था। उन्हें डर था कि अगर यही ढर्रा रहा तो वे भी एक दिन मजदूर बनकर रह जाएँगे या हो सकता है कि उनके पास कोई रोज़गार ही न रह जाए। अब सिर्फ़ संगठित मजदूर ही थे जिनकी हिम्मत टूटी नहीं थी। लेकिन बेरोज़गारों की बढ़ती फ़ौज उनकी मोल-भाव क्षमता को भी चोट पहुँचा रही थी। बड़े व्यवसाय संकट में थे। किसानों का एक बहुत बड़ा वर्ग कृषि उत्पादों की कीमतों में बेहिसाब गिरावट की वजह से परेशान था। युवाओं को अपना भविष्य अंधकारमय दिखाई दे रहा था। अपने बच्चों का पेट भर पाने में असफल औरतों के दिल भी डूब रहे थे।

राजनीतिक स्तर पर वाइमर गणराज्य एक नाजुक दौर से गुज़र रहा था। वाइमर संविधान में कुछ ऐसी कमियाँ थीं जिनकी वजह से गणराज्य कभी भी अस्थिरता और तानाशाही का शिकार बन सकता था। इनमें से एक कमी आनुपातिक प्रतिनिधित्व से संबंधित थी। इस प्रावधान की वजह से किसी एक पार्टी को बहुमत मिलना लगभग नामुमकिन बन गया था। हर बार गठबंधन सरकार सत्ता में आ रही थी। दूसरी समस्या अनुच्छेद 48 की वजह से थी जिसमें राष्ट्रपति को आपातकाल लागू करने, नागरिक अधिकार रद्द करने और अध्यादेशों के ज़रिए शासन चलाने का अधिकार दिया गया था। अपने छोटे से जीवन काल में वाइमर गणराज्य का शासन 20 मंत्रिमंडलों के हाथों में रहा और उनकी औसत अवधि 239 दिन से ज़्यादा नहीं रही। इस दौरान अनुच्छेद 48 का भी ज़मकर इस्तेमाल किया गया। पर इन सारे नुस्खों के बावजूद संकट दूर नहीं हो पाया। लोकतांत्रिक संसदीय व्यवस्था में लोगों का विश्वास खत्म होने लगा क्योंकि वह उनके लिए कोई समाधान नहीं खोज पा रही थी।

नए शब्द

सर्वहाराकरण : गरीब होते-होते मजदूर वर्ग की आर्थिक स्थिति में पहुँच जाना।

